सरसों के रोगों का प्रबंधन

महेन्द्र सिंह यादव, नसीम अहमद, नीलम मेहता एवं चिरंतन चट्टोपाध्याय

भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय समेकित नाशीजीव प्रबंधन अनुसंधान केन्द्र, नई दिल्ली -110 012

सरसों वर्गीय फसलें हमारे देश के तिलहन परिदृश्य में मुख्य भूमिका निभाती हैं। तिलहनी फसलें समस्त राष्ट्रीय उत्पाद का 5 प्रतिशत तथा कृषि उत्पाद का 10 प्रतिशत हिस्सा हैं। अनुमान है कि वर्ष 2020 के अन्त तक 58 मिलियन टन तिलहनों की आवश्यकता होगी, जिसमें सरसों वर्गीय तिलहनों की भागीदारी लगभग 24 मिलियन टन होगी। इन फसलों की बढ़ोतरी का सीधा प्रभाव विदेशी मुद्रा की बचत के रूप में होता है। भारत में उगाई जाने वाली नौ तिलहन फसलों में सरसों वर्गीय फसलों का 32 प्रतिशत योगदान है। देश में समस्त कृषि योग्य भूमि का तीन प्रतिशत क्षेत्र (6.5 मिलियन हैक्टर) केवल सरसों वर्गीय फसलों के अन्तर्गत आता है। सरसों वर्ग की फसलों में राया या राई, पीली व भूरी सरसों, तोरिया, गोभी सरसों, अफ्रीकन सरसों व तारामीरा शामिल हैं। सरसों वर्गीय फसलों के कुल क्षेत्रफल में हमारा देश विश्व में पहले स्थान पर है, लेकिन प्रति हैक्टर उत्पादकता में पीछे है। सरसों वर्गीय तेलों को खाने एवं खाना बनाने की दृष्टि से बेहतर समझा जाता है। इनमें पुफा सफा अनुपात काफी अच्छा है। सरसों की खेती अधिकतर वर्षा सिंचित नमी अथवा सीमित सिंचाई सुविधा वाले क्षेत्रों में की जाती है। इन फसलों की खेती अधिकतर राजस्थान, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, मध्य प्रदेश व गुजरात में होती है। इनकी उपज को बढ़ाने तथा टिकाऊ बनाये रखने में एक प्रमुख समस्या रोगों का प्रकोप है, जो कुछ हद तक इन फसलों के अस्थिर उत्पादन के लिए उत्तरदायी है। सरसों वर्गीय फसलों के उत्पादन में स्थिरता लाने हेतु रोगों का उचित समय पर उपयुक्त प्रबन्धन करना अति आवश्यक है। इस लेख के माध्यम से सरसों वर्गीय फसलों के रोगों के लक्षण एवं रोकथाम के उपाय दिए जा रहे हैं।

1. पौध आर्द्र गलन

लक्षणः इस रोग की दो अवस्थाएं होती हैं पहली बीज के उगने से पहले की अवस्था व दूसरी बीज के उगने के बाद की अवस्था। बीज के उगने से पहले की अवस्था में बीज का भ्रूण भूमि के बाहर अंकुरित होने से पहले ही रोगग्रस्त होकर मर जाता है। मूलांकुर एवं प्रांकुर बीज से बाहर निकल आते हैं फिर भी वे सड़ जाते हैं। बीज के उगने के बाद की आर्द्र गलन अवस्था छोटे पौधों में पाई जाती है। संक्रमण, पौधे में भूमि के अंदर वाले भाग में तथा भूमि की सतह पर होता है। फलतः संक्रमित भाग मुलायम तथा

आर्द्र गलन रोग

पनीला हो जाता है। जैसे–जैसे रोग बढ़ता है संक्रमित स्थान पर तना सिकुड़ जाता है तथा पौध गिर जाती है साधारणतया पौध के संक्रमित होने से पहले पत्तियों एवं बीजपत्र पर म्लानि के लक्षण स्पष्ट होते हैं।

रोगजनकः यह रोग कई कवकों जैसे *राइजोक्टोनिया, फाइटोफ्थोरा, फ्यूजेरियम, पिथियम, स्क्लेरोशियम* आदि की जातियों से उत्पन्न होता है।

रोगचक्र तथा अनुकूल वातावरणः मृदा में या पादप अवशेषों से पोषण प्राप्त करके कवक काफी समय तक जीवित रहता है। परंतु मृदा पर गिरे *स्क्लेरोशियम* एवं पादप अवशेषों पर पोषित कवकजाल प्राथमिक निवेश द्रव्य का कार्य करते हैं। संवर्धन वातावरण में *राइजोक्टोनिया* के लिए अनुकूलतम तापमान 25–30 डिग्री.से. न्यून्तम 8 डिग्री.से. और अधिकतम 31–35 डिग्री.से. होता है। पौद संक्रमण 18 डिग्री.से. के अनुकूल तापमान पर होता है। तथापि इसकी संक्रामकता नम मृदा में अधिक होती है। मृदा में नमी होने के साथ–साथ उच्च तापमान का होना रोग की संक्रामकता को बढ़ाने में काफी मदद करता है।

प्रबंधन

- बुआई से पहले पानी की निकासी का उचित प्रबन्ध करें।
- यदि कम्पोस्ट खाद का प्रयोग करना अभिष्ट हो तो वह पूर्ण रूप से सड़ी होनी आवश्यक है।
- बीज को *ट्राइकोडरमा* (10 ग्रा./कि.ग्रा.) या कार्बेन्डाज़िम (1 ग्रा./कि.ग्रा.) या कैप्टान (2 ग्रा./कि. ग्रा.) द्वारा उपचारित करके बोएं।
- कटाई के बाद फसल के अवशेषों को नष्ट कर देना चाहिए। इससे निवेश द्रव्य में कमी आती है।

2. आल्टरनेरिया अंगमारी

लक्षणः इस रोग में बुआई के लगभग 60–70 दिन के बाद सर्वप्रथम पौधों की निचली पत्तियों की ऊपरी सतह पर गोलाकार हल्के भूरे धब्बे प्रकट होते हैं। बाद में ये धब्बे बड़े आकार व हल्के काले रंग के हो जाते हैं तथा इन धब्बों में गोल छल्ले साफ नजर आते हैं। कई धब्बों के आपस में मिल जाने से पूरी पत्ती झुलस जाती है। जैसे–जैसे रोग ऊपर बढ़ता है, निचली पत्तियाँ झुलस कर गिर जाती हैं। पत्तियों पर धब्बे अनुकूल वातावरण में तेजी से बढ़ते हैं जिससे पत्तियाँ असमय नष्ट हो जाती हैं और पैदावार

आल्टरनेरिया अंगमारी रोग

में हानि पहुँचती है। बाद में काले धब्बे तनों व फलियों पर भी बन जाते हैं। इससे दाने छोटे हो जाते हैं एवं सिकुड़ जाते हैं व दानों का रंग भी बदल जाता है। रोग का प्रकोप अधिक होने पर फलियाँ फट जाती हैं व दानें झड़ जाते हैं।

रोगजनक : यह रोग *आल्टरनेरिया ब्रेसिकी* एवं *अल्टरनेरिया ब्रोसिसिकोला* तथा *अल्टरनेरिया रेफनाई* नामक कवकों के द्वारा उत्पन्न होता है।

रोगचक्र तथा अनुकूल वातावरण: इस रोग का कवक रोगी पौधों के अवशेषों पर मिट्टी में जीवित रहता है तथा दूसरे पौधों को संक्रमित कर उन पर अपना जीवन चक्र पूरा करता है। इस रोग के विकास में 20–25 डिग्री.से. तापमान तथा वातावरण में 80 प्रतिशत से अधिक आपेक्षित आर्द्रता सहायक होती है। नम व गर्म मौसम या अदल–बदल के वर्षा व धूप एवं तेज हवाए भी इस रोग को बढ़ाती हैं। आर्द्र जलवायु में कोनिडियम अधिक मात्रा में बनते हैं और वायु द्वारा विसर्जित होते हैं।

प्रबंधन

- रोगी पौधों के अवशेषों को जला कर नष्ट कर दें, क्योंकि इन्हीं के द्वारा प्राथमिक निवेश द्रव्य पौधों को संक्रमित करता है।
- रोगरोधी किस्मों का प्रयोग करें।
- रोगरहित प्रमाणित बीज ही प्रयोग में लाएं। रोगग्रस्त पौधों से प्राप्त बीज का प्रयोग न करें। बीज को *ट्राइकोडरमा हरजियानम* (10 ग्राम/कि.ग्रा. बीज) अथवा ताजा बनाए गए लहसुन सत् 2 प्रतिशत की दर से उपचारित करके बोएं।
- आल्टरनेरिया अंगमारी ग्रसित निचली पत्तियों को चुन कर हटा दें।
- पौधों पर रोग के लक्षण दिखने पर ताजा बनाए गए लहसुन सत् का 2 प्रतिशत या मेंकोजेब या एंट्राकाल कवकनाशी का 2 ग्रा. प्रति लीटर की दर से छिड़काव करें।

3. सफेद रतुआ /श्वेत किट्ट

लक्षण: इस रोग में सर्वप्रथम पत्तियों की निचली सतह पर सफेद अथवा बादामी रंग के दाने जैसे धब्बे बनते हैं। पत्तियों की ऊपरी सतह पीली या गुलाबी रंग की हो जाती है। ये छोटे–छोटे सफेद धब्बे एक दूसरे से मिल कर बड़ा रूप धारण कर लेते हैं। इसमें से सफेद कण बाहर निकलने लगते हैं व रोग को फैलाते हैं। रोग की गंभीर अवस्था में पत्तियाँ सूख कर गिर जाती हैं, जिससे पौधे कमजोर रह जाते हैं। यह रोग पुष्पक्रम को भी प्रभावित करता है, जिससे पुष्पक्रम फूल कर विकृत आकार के हो जाते हैं। इस अवस्था को स्टैगहैड कहते हैं। विकृत पुष्पक्रमों पर फलियाँ नहीं बनती हैं, यदि बनती भी हैं तो दाने नहीं पड़ते हैं।

सरसों का सफेद रतुआ

रोगजनकः यह रोग *एल्बुगो केन्डिडा* कवक के द्वारा उत्पन्न होता है जो एक अविकल्पी परजीवी है।

रोगचक्र तथा अनुकूल वातावरणः इस रोग का कवक मिट्टी में रोगी पौधों के अवशेषों पर जीवित रहता है अथवा बीज के साथ रहता है जो दूसरे वर्ष बोई जाने वाली सरसों वर्गीय फसलों को संक्रमित करता है। यह रोग दिसम्बर–जनवरी में जब तापमान 5–12 डिग्री.से. आपेक्षित आर्द्रता 80–90 प्रतिशत तथा हवा के साथ वर्षा होती है तो तीव्र गति से फैलता है। इसके साथ ही पछेती फसल पर इस रोग का प्रकोप ज्यादा होता है।

प्रबंधन

- रोगरोधी किस्मों का प्रयोग करें।
- स्वस्थ बीज का प्रयोग करें ताकि बीज के साथ लगे कवक रोगजनकों की सम्भावना दूर की जा सके तथा प्राथमिक निवेश द्रव्य का उन्मूलन करने में सहायता मिले।
- दो–तीन वर्षीय फसल चक्र अपनाने से मिट्टी या पौधे के अवशेषों पर स्थित निवेश द्रव्य नष्ट किए जा सकते हैं।
- बुआई के समय बीज को मैटलैक्सिल–एक्स एल (6 मि.ली./कि.ग्रा. बीज) से उपचार करके बोएं।
- खरपतवार जो इस रोग के प्राथमिक निवेश द्रव्य का कार्य करते हैं, इन्हें खेत से निकाल दें।
- सफेद रतुआ ग्रसित निचली पत्तियों को चुन कर हटा दें।
- रोग के गंभीर लक्षण दिखने पर मैटलैक्सिल 4 प्रतिशत व मैन्कोजेब 68 प्रतिशत वाले कवकनाशी रसायन का 2.5 ग्रा./ली. की दर से पानी में घोल कर छिड़काव करें।

4. मृदुरोमिल आसिता

लक्षण : इस रोग के लक्षण पौधों के सभी भागों पर देखे जा सकते हैं। बीज पत्र की अवस्था में रोग का प्रकोप होने से पौधे प्रारंभिक अवस्था में ही सूख जाते हैं, जिससे पौधों की संख्या में कमी आ जाती है। बुआई के कुछ दिन बाद बीज तथा ऊपर की कुछ पत्तियों पर हल्के रंग के छोटे–छोटे कोणीय धब्बे दिखाई पड़ते हैं। इसके बाद धब्बों के ठीक नीचे पत्तियों की निचली सतह पर रूई जैसी कवक की वृद्धि दिखाई पड़ती है। रोग की उग्र अवस्था में ग्रसित पत्तियाँ सूख कर मुड़ जाती हैं तथा गिर जाती हैं। इस रोग का प्रकोप पुष्पक्रमों पर भी होता है।

मृदुरोमिल आसिता रोग

रोगजनक : यह रोग *हायलोपेरोनोस्पोरा ब्रेसिकी* कवक के द्वारा जनित है।

रोगचक्र तथा अनुकूल वातावरण : यह कवक, रोगग्रस्त पौधों के अवशेषों के साथ मृदा में रहता है। पौधों के अवशेषों के विघटित हो जाने पर कवक मिट्टी में मौजूद रहते हैं एवं दूसरे मौसम में परपोषी के

बोने के बाद प्राथमिक निवेश द्रव्य का कार्य करते हैं। एक बार संक्रमण हो जाने पर क्षतस्थल पर बने कोनिडियम द्वितीय निवेश द्रव्य का कार्य करते हैं। संक्रमण के लिए 10–20 डिग्री.से. तापमान एवं 90 प्रतिशत से अधिक नमी उपयुक्त होती है। कोनिडियम का अंकुरण इसी अनुकूल वातावरण में अधिक होता है।

प्रबंधन

- पौधों के अवशेषों को जला कर नष्ट कर दें क्योंकि इन्हीं से रोग का प्राथमिक निवेश द्रव्य आता है।
- मृदा में पड़े कवक जनकों को नष्ट करने के लिए 2–5 वर्ष का फसल चक्र अपनाना चाहिए।
- जिन क्षेत्रों में मृदुरोमिल आसिता रोग का प्रकोप होता है, उन स्थानों पर रोगरोधी किस्में बोनी चाहिए।
- रोग के लक्षण दिखने पर मैटलैक्सिल 4 प्रतिशत व मैनकोजेब 68 प्रतिशत कवकनाशी का 2.5 ग्रा. /ली. की दर से पानी में घोल बना कर छिड़काव करें।

5. स्क्लेरोटीनिया गलन

लक्षणः इस रोग में पत्तों व तनों पर लंबे चिपचिपे सफेद धब्बे दिखाई पड़ते हैं, जो बाद में रूई जैसे सफेद कवकजाल की वृद्धि से ढक जाते हैं। पत्तों पर इसके लक्षण कम दिखाई देते हैं (इसी कारण, जब तक कि पूरा का पूरा पौधा अन्दर से गल न जाए, रोगग्रस्त पौधे आसानी से दिखाई नहीं पड़ते)। जब रोग की शुरूआत पत्ती से होती है तब पत्ती मुरझा कर नीचे की ओर लटक जाती है। जब तने के चारों तरफ इन धब्बों का घेरा बन जाता है तो पौधे मुरझा कर सूख जाते हैं। धब्बा जब छोटा होता है तो पौधा सूखता नहीं अपितु औसत से छोटा रह जाता है और समय से पहले पक जाता है। ऐसे पौधों को आसानी से खेत में पहचाना जा सकता है। इस रोग से सूखे पौधों के तनों में काले रंग वाले पिंड बन जाते हैं।

स्क्लेरोटीनिया गलन रोग

रोगजनकः यह रोग *स्क्लेरोटीनिया स्क्लेरोसियोरम* फफूँद द्वारा उत्पन्न होता है।

रोगचक्र तथा अनुकूल वातावरणः प्रारंभिक संक्रमण एस्कोस्पोर (जो कि मृदा की सतह पर ऐपोथीसियम से निकलते हैं) द्वारा होता है। इस प्राकर से स्कलेरोशियम कवक की प्रसुप्त संरचना है। कवक मिट्टी में काले रंग के स्कलेरोशियों के रूप में मौजूद रहता है। यह मृदा व बीज जनित रोग है। लगातार एक ही खेत में सरसों वर्गीय फसल बोनें से रोग की उग्रता और बढ़ जाती है। इस रोग का प्रकोप फूल आने की अवस्था में अधिक होता है। इसके अलावा मौसम ठंडा व नम होता है तो इस रोग की उग्रता बढ़ती है, स्वस्थ पौधों एवं रोगग्रस्त पौधों के परस्पर स्पर्श द्वारा भी यह रोग फैलता है।

प्रबंधन

- गर्मियों में गहरी जुताई करने से रोगी पौधों के अवशेषों पर पड़े रोगजनक जमीन में गहराई में दब जाते हैं व कुछ रोगजनक अधिक तापमान के कारण नष्ट हो जाते हैं।
- धान अथवा मक्के के साथ सरसों का फसल चक्र अपनाएं।
- फसल की बुआई से पहले *ट्राईकोडरमा हरजियानम* (2.5 कि.ग्रा./हैक्टेयर) को 50 कि.ग्रा. गोबर की खाद में मिला कर भूमि में डालें।
- सरसों में अनुमोदित किए गए सन्तुलित उर्वरकों का ही प्रयोग करें।
- फसल की बुआई अक्टूबर के अंतिम सप्ताह तक अवश्य करें। प्रमाणित बीज का ही प्रयोग करें।
- रोगरोधी किस्मों का प्रयोग करें।
- बीज को *ट्राईकोडरमा हरजियानम* (10 ग्रा./कि.ग्रा. बीज) से उपचारित करें।
- फसल की कतारों तथा पौधों के बीच उचित दूरी रखें।
- चौड़ी पत्तियों वाली खरपतवार का नियंत्रण करें।
- फसल की सिंचाई आवश्यकतानुसार करें तथा खेत से जल निकास की उचित व्यवस्था करें।
- रोग के लक्षण दिखने पर पौधों पर ताजा बनाए हुए लहसुन सत् का 2 प्रतिशत की दर से या कार्बेन्डाजिम कवकनाशी का 2 ग्राम प्रति लीटर की दर से छिड़काव करें।
- स्कलेरोटीनिया गलन रोग ग्रसित पौधे जो सामान्य पौधों से पहले पक जाते हैं, उन्हें पिंड बनने से पूर्व ही जड़ से उखाड़ कर बाहर निकाल दें एवं बाद में रोगग्रसित अवशेषों को जला दें।

6. चूर्णिल आसिता

लक्षणः प्रारम्भ में यह रोग पौधों के तनों, पत्तियों एवं फलियों पर श्वेत, गोल आटे जैसे चूर्णी धब्बों के रूप में दिखाई पड़ता है। तापमान की वृद्धि के साथ–साथ ये धब्बे आकार में बड़े हो जाते हैं और समस्त पौधे को ढक लेते हैं, जैसे उन पर सफेद दानेदार चाक का चूरा छिड़क दिया गया हो। इससे संक्रमित पौधा कमजोर हो जाता है व फलियाँ कम लगती हैं। रोगग्रस्त फलियाँ आकार में छोटी या खाली रह जाती हैं और उनमें सिकुड़े हुए बीज के कुछ ही दाने बनते हैं। तापमान बढ़ने के साथ ही इस रोग का प्रकोप शुरू हो जाता है।

चूर्णिल आसिता रोग

रोगजनकः यह रोग *इरिसाइफी क्रुसीफेरेरम* नामक कवक द्वारा उत्पन्न होता है।

रोगचक्र तथा अनुकूल वातावरणः क्लीस्टोथिसियम (कवक की संरचना) अधिकतर मृदा में रोगग्रस्त अवशेषों से विकसित होते हैं और इन्हीं के द्वारा कवक एक मौसम से दूसरे मौसम तक जीवित रहते हैं।

प्रायः फरवरी–मार्च में जब वातावरण का तापमान बढ़ जाता है तब इसका प्रकोप होता है। लगभग 15–20^0 से. तापमान एवं 60 प्रतिशत के कम आपेक्षित आर्द्रता रहने पर इस रोग का संक्रमण तीव्रता से फैलता है। यह रोग देर से बुआई की गयी फसलों पर ज्यादा दिखाई देता है।

प्रबंधन

- रोगग्रस्त पादप अवशेषों को इकट्ठा करके नष्ट कर देने से प्राथमिक निवेश द्रव्य कम किया जा सकता है।
- रोगरोधी किस्मों का प्रयोग करें।
- समय पर बिजाई करें व पछेती बिजाई से बचें।
- फसल में 50 प्रतिशत टहनियाँ बनने पर सिंचाई करना उचित होता है।
- रोग के लक्षण दिखाई देने पर कवकनाशी रसायन घुलनशील सल्फर का 0.2 प्रतिशत की दर से या कैराथेन 0.1 प्रतिशत की दर से 10 दिन के अंतराल पर तीन बार छिड़काव करें।

7. मुद्‌गर-मूल

लक्षण : प्रभावित पौधे छोटे रह जाते हैं, जिन पर पीले हरे व पीले पत्ते दिखाई देते हैं। ये पौधे मूल जड़ व दूसरी जड़ों में अतिवृद्धि दिखाते हैं, जो गद्‌दे की तरह हो जाते हैं तथा आखिर में पौधे मर जाते हैं।

रोगजनक : यह रोग *प्लाजमोडियोफोरा ब्रेसिकी* नामक कवक द्वारा उत्पन्न होता है।

रोगचक्र तथा अनुकूल वातावरण : रोगजनक मृदा में सुप्त अवस्था में रहता है। प्राथमिक निवेश द्रव्य चलजीवाणुओं से शुरू होता है व दूसरे चलबीजाणु आगे जड़ों के दूसरे भागों को प्रभावित करते हैं। द्वितीयक निवेश द्रव्य बीजाणु धानी द्वारा उत्पन्न चलबीजाणु हैं, जो नए संक्रमण करते हैं और रोग को तीव्र गति से फैलाते है। नम व ठण्डी जलवायु इस रोग के लिए अनुकूल होती है।

मुद्‌गर-मूल रोग

प्रबंधन

- रोगरोधी किस्मों का प्रयोग करें।
- जमीन में चूना (लाइम) डालकर व पानी की निकासी का उचित प्रबन्ध कर रोग से बचा जा सकता है।
- नाइट्रोजन खादों में कैल्सियम अमोनियम नाइट्रेट का प्रयोग रोग के प्रबंध में सहायक है।

8. काला विगलन

लक्षण: इस जीवाणु जनित रोग के लक्षण सरसों में बिजाई के दो महीने बाद दिखाई देते हैं। पौधों के रोगग्रस्त होने पर पत्तियों पर सबसे पहले बाहरी किनारों पर अंग्रेजी 'V' के आकार के नमी युक्त नारंगी से पीले रंग के धब्बे बनते हैं बाद में ग्रसित पत्तियों की शिराएं काली हो जाती हैं तथा रोग की उग्र अवस्था में रोग की बढ़वार अधिक हो जाने पर पूरी पत्ती पीली होकर मुरझा कर गिर जाती हैं। शुरू में रोग का संक्रमण होने के बाद पौधे का तना रोग्रस्त हो जाता है तथा तने की शिराएं काली हो जाती हैं। रोग से प्रभावित पौधे बौने रह जाते एवं पत्तियाँ समय से पहले गिर जाती हैं।

काला विगलन रोग के लक्षण

रोगजनक: यह रोग *जैन्थोमोनास कम्पैन्ट्रिस* पथोवार *कम्पैन्ट्रिस* नामक जीवाणु से उत्पन्न होता है।

रोगचक्र तथा अनुकूल वातावरण: जीवाणु एक फसल से दूसरी फसल तक मृदा में, बीज के साथ तथा पादप अवशेषों पर पोषण करके जीवित रहता है। यह बीज जनित रोग है। अल्प गर्म व नम मौसम इस रोग को बढ़ाता है। रोगी बीज बोने के बाद जीवाणु बढ़ने लगते हैं और पौधे को रोगग्रस्त कर देते हैं। द्वितीय निवेश द्रव्य का प्रसार वायु, पानी, भौतिक व जैविक पदार्थों से होता है।

प्रबंधन

- रोगरोधी किस्मों का प्रयोग करें।
- रोगी पौधों के अवशेषों को नष्ट कर देना चाहिए।
- फसल चक्र, शीघ्र विरलन करना, अच्छी जुताई, गुड़ाई, समय पर सिंचाई तथा मृदा में पोटाश के प्रयोग से यह रोग कम हो जाता है।
- द्वितीय संक्रमण को रोकने के लिए ओरियोमाईसीन (200 माइक्रो ग्रा./मि.लि.) का घोल बना कर छिड़काव करें।
- कवकनाशी कार्बोसिन तथा कॉपर ऑक्सीक्लोराईड भी इस रोग की रोकथाम में सहायक हैं।

9. जीवाणु वृत्त विगलन

लक्षण: इस रोग में जमीन की सतह से तने पर पनीले धब्बे दिखाई देते हैं। ये धब्बे धीरे–धीरे बढ़कर मुलायम टहनियों को प्रभावित करते हैं। पत्ते पानी की कमी दर्शाते हुए मुरझा जाते हैं। प्रभावित तनों व टहनियों का गूदा ऊत्तक बहुत मुलायम व तरल मटमैले रंग का हो जाता है व उससे दुर्गन्ध आती है। बुरी तरह प्रभावित पौधे उखड़ जाते हैं।

रोगजनक: यह रोग *इरविनिया कैरोटोवोरा* उपजाति कैटोरोबोरा नामक जीवाणु से उत्पन्न होता है।

रोगचक्र तथा अनुकूल वातावरण : यह रोगजनक मृदा में रोगी पौधों के अवशेषों पर जीवन चक्र पूरा करता है। यह रोग फसल में पहली सिंचाई के बाद जब मौसम थोड़ा उष्ण तथा आर्द्र होता है, तो प्रकट होता है। जल्दी बढ़ने वाले मुलायम पौधे इससे ज्यादा प्रभावित होते हैं। खराब जल निकासी व नाइट्रोजन की ज्यादा मात्रा इस रोग को बढ़ाती है।

प्रबंधन

- उन्नत सस्य क्रियाएं कुछ हद तक इन रोगों को रोकने में सहायक हो सकती हैं।
- गैर परपोषी फसल चक्र, गर्मियों में गहरी जुताई, रोगग्रस्त पौधों का निकालना इत्यादि रोग को रोकने में सहायता करते हैं। सस्य क्रियाएं निवेश द्रव्य की वृद्धि को घटाती हैं।
- जरूरत से अधिक सिंचाई न करें।
- रोग के लक्षण दिखाई देने पर स्ट्रेप्टोसाइक्लिन रसायन (100 पी.पी.एम.) तथा कॉपर ऑक्सीक्लोराईड 0.2 प्रतिशत का छिड़काव करना चाहिए।

10. मोजेक

लक्षण : इस रोग में पत्ते टेढे–मेढे व रंगीन हो जाते हैं। प्रभावित पौधा बौना रह जाता है व उन पर बहुत कम या फूल नहीं लगते। प्राथमिक शाखाएं घट जाती हैं उनमें फलियाँ नहीं बनतीं व कुछ बनतीं भी हैं तो दाने बहुत कम बनते हैं, जिनमें तेल की मात्रा घट जाती है।

सरसों के मोजेक

रोगजनकः यह टरनिप वायरस–1 विषाणु जनित रोग है।

रोगचक्र व अनुकूल वातावरण : माहू इस रोग के रोगवाहक हैं व इस रोग को फैलाने में सहायक है तथा जंगली मूली व जंगली सरसों इस रोग के परपोषी पौधे हैं।

प्रबंधन

- रोगरोधी किस्में बोएं।
- रोगवाहक के नियंत्रण से इस रोग को रोका जा सकता है।
- थायोमिथोक्साम से बीजोपचार कीटनाशी के छिड़काव से बेहतर विकल्प है।

11. पर्णभित्ती (फाईलोडी)

लक्षण : रोग ग्रसित फसल पर फूल आने पर इस रोग के लक्षण स्पष्ट देखे जा सकते हैं। पूर्ण पुष्पा इस रोग से प्रभावित होते हैं। रोगग्रस्त पौधों में अनेक शाखाएं निकल आती हैं और वो झाड़ीनुमा बन

ते हैं। फलियाँ या तो बनती ही नहीं या छोटे आकार की ग्डाकार, नीली, हरी तथा खाली गुब्बारानुमा आकार की ाती हैं।

गजनक : यह रोग कैडिडेटस फाइटोप्लाज्मा द्वारा होता ।

गचक्र व अनुकूल वातावरण : फाइटोप्लाजमा जनित ह रोग पर्ण फुदका (लीफ हॉपर) द्वारा एक पौधे से दूसरे धे तक फैलता है। यह बीज जनित रोग है। अगस्त मास अगेती बिजाई व सितम्बर मास में समय पर की गई जाई, इस रोग को बढ़ाती है तथा शुष्क व गर्म मौसम इस ग को बढ़ाता है।

पर्णभित्ती रोग

बंधन

खेत व खेत के आसपास की खरपतवार जो रोग के प्राथमिक निवेश द्रव्य है, खेत से निकाल दीजिए।

फसल में पौधों की सघनता रोग को घटाती है। रोगवाहक पर्ण फुदका (लीफ हॉपर) के प्रबंधन से इस रोग का फैलाव रोका जा सकता है। इसके लिए जैसे ही रोग के लक्षण दिखाई दे डाईमिथोएट या मेटासिस्टॉक्स (0.1 प्रतिशत) घोल का छिड़काव आरंभ कर देना चाहिए तथा 15 दिन के अंतर पर छिड़काव दोहराना चाहिए।

पर्णभित्ती रोगग्रस्त क्षेत्रों में फसल की पछेती बुआई करें।

3. कूर्च प्ररोह (ओरोबैंकी)

लक्षण : इस परजीवी की जड़ें परपोषी की जड़ों को बेधकर अपना पोषण तत्व प्राप्त करती हैं। परपोषी पौधों के चारों तरफ बहुत से परजीवियों के तने मिट्टी को तोड़ते हुए निकलते दिखाई देते हैं। अगर परपोषी पौधों को परजीवी के साथ सावधानी से उखाड़ कर देखें तो परजीवी की जड़ें परपोषी पौधों के मूलतंत्र में भीतर दिखाई पड़ती हैं। पोषण–संभरण निकास के फलस्वरूप परपोषी पौधों की वृद्धि रूक जाती है, जिसके कारण पौधा छोटा रह जाता है, कभी–कभी मर भी जाता है।

ओरोबैंकी

रोगजनक : *आरोबैंकी इजिप्टिका* पूर्ण रूप से परजीवी सरसों पर पाया जाता है।

जाते हैं। फलियाँ या तो बनती ही नहीं या छोटे आकार की लम्डाकार, नीली, हरी तथा खाली गुब्बारानुमा आकार की बनती हैं।

पर्णभित्ती रोग

रोगजनक : यह रोग कैडिडेटस फाइटोप्लाज्मा द्वारा होता है।

रोगचक्र व अनुकूल वातावरण : फाइटोप्लाजमा जनित यह रोग पर्ण फुदका (लीफ हॉपर) द्वारा एक पौधे से दूसरे पौधे तक फैलता है। यह बीज जनित रोग है। अगस्त मास में अगेती बिजाई व सितम्बर मास में समय पर की गई बिजाई, इस रोग को बढ़ाती है तथा शुष्क व गर्म मौसम इस रोग को बढ़ाता है।

प्रबंधन

- खेत व खेत के आसपास की खरपतवार जो रोग के प्राथमिक निवेश द्रव्य है, खेत से निकाल दीजिए।
- फसल में पौधों की सघनता रोग को घटाती है। रोगवाहक पर्ण फुदका (लीफ हॉपर) के प्रबंधन से इस रोग का फैलाव रोका जा सकता है। इसके लिए जैसे ही रोग के लक्षण दिखाई दे डाईमिथोएट या मेटासिस्टॉक्स (0.1 प्रतिशत) घोल का छिड़काव आरंभ कर देना चाहिए तथा 15 दिन के अंतर पर छिड़काव दोहराना चाहिए।
- पर्णभित्ती रोगग्रस्त क्षेत्रों में फसल की पछेती बुआई करें।

13. कूर्च प्ररोह (ओरोबैंकी)

लक्षण : इस परजीवी की जड़ें परपोषी की जड़ों को बेधकर अपना पोषण तत्व प्राप्त करती हैं। परपोषी पौधों के चारों तरफ बहुत से परजीवियों के तने मिट्टी को तोड़ते हुए निकलते दिखाई देते हैं। अगर परपोषी पौधों को परजीवी के साथ सावधानी से उखाड़ कर देखें तो परजीवी की जड़ें परपोषी पौधों के मूलतंत्र में भीतर दिखाई पड़ती हैं। पोषण–संभरण निकास के फलस्वरूप परपोषी पौधों की वृद्धि रूक जाती है, जिसके कारण पौधा छोटा रह जाता है, कभी–कभी मर भी जाता है।

ओरोबैंकी

रोगजनक : *आरोबैंकी इजिप्टिका* पूर्ण रूप से परजीवी सरसों पर पाया जाता है।

रोगचक्र व अनुकूल वातावरण : इस परजीवी का तना दृढ़ एवं गूदेदार होता है। फूल पत्तियों के कक्ष से निकलते हैं जो सफेद नलिकाकार होते हैं। बीज भूमि में गिर कर मिट्टी में मिल जाते हैं, जो कई वर्षों तक जीवित रहते हैं। अनुकूल वातावरण मिलने पर ये उगते हैं व अगली फसल को इसी प्रकार हानि पहुँचाते हैं। यही खेत में निवेश द्रव्य का कार्य करते हैं तथा निवेश द्रव्य की मात्रा को बढ़ाते रहते हैं। यह पूर्ण परजीवी है और इसके बीज सरसों की जड़ों की उपस्थिति में ही अंकुरित होते हैं। यह देखा गया है कि परपोषी की जड़ों से कुछ रासायनिक द्रव्य निकलते हैं, जो परजीवी के बीजों को अंकुरित होने के लिए उत्तेजित करते हैं। ओरोबंकी के बीज मृदा में सुप्तावस्था में कई वर्षों तक रह सकते हैं। उगने पर ये सरसों की जड़ों पर परजीवी संबंध स्थापित करते हैं। इसके पश्चात इन पर प्ररोह एवं फूल आदि बनते हैं। बीज बनकर मृदा में गिर जाते हैं और इस प्रकार इनका जीवन चक्र चलता रहता है।

प्रबंधन

- परजीवी को उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिए। यदि बीज बन गए हों तो पौधों को सावधानी से निकाल कर जला देना चाहिए।
- इसकी रोकथाम के लिए लम्बे समय के फसल चक्र अपनाने चाहिए, क्योंकि इसके बीज मृदा में कई वर्षों तक जीवित रहते हैं।
- रोगरोधी किस्मों का प्रयोग करें।
- परजीवी के उगने के समय गलाईफोसेट रसायन (खर–पतवार नाशक) 25 ग्रा./है. की दर से छिड़कने से काफी अच्छे नतीजे मिले हैं।

समेकित रोग प्रबंधन

सरसों वर्गीय फसलों में प्रमुख रोगों का अच्छी प्रकार से कम लागत में प्रबन्धन किया जा सकता है। रोगों के नियंत्रण के लिए विभिन्न तरीकों का समाकलन करना जैसे कृषि पद्धति या संवर्धन व्यवहार, रोग प्रतिरोध, रासायनिक और जैविक उपाय इन रोगों की रोकथाम में लाभकारी सिद्ध हो सकते हैं। रोगजनक की मात्रा कम करने के लिए लम्बे समय के लिए फसल चक्र अपनाना, रोग ग्रसित पौधों के अवशेषों को जलाना व खरपतवारों को नष्ट करना आवश्यक है। ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करने से रोगी पौधों के अवशेषों पर पड़े रोगजनक जमीन में गहराई में दब जाते हैं। इसके साथ ही कुछ रोगजनक अधिक तापमान के कारण नष्ट हो जाते हैं। ऐसा करने से रोगों की उग्रता में कमी आती है। रोगों से बचाव के लिए फसल की बुआई से पहले *ट्राइकोडर्मा हरजियानम* (2.5 कि.ग्रा./है.) को 50 कि. ग्रा. गोबर की खाद में मिला कर भूमि में डालें। फसल की बुआई अक्टूबर के अंतिम सप्ताह तक अवश्य कर देनी चाहिए क्योंकि इसके बाद बोई गई सरसों वर्गीय फसलों पर रोगों का अधिक प्रकोप होता है। सरसों में अनुमोदित किए गए सन्तुलित उर्वरकों का प्रयोग करें। फसलों में अधिक मात्रा में नाइट्रोजन को प्रयोग करने से बीमारियों का आक्रमण बढ़ जाता है। रोगों से बचाए रखने के लिए स्वस्थ एवं स्वच्छ बीज को *ट्राईकोडर्मा हरजियानम* (10 ग्रा./कि.ग्रा. बीज) अथवा ताजा बनाये गए लहसुन सत् (2 प्रतिशत) अथवा मैटलैक्सिल (6 मि.ली./कि.ग्रा. बीज) से उपचारित करके बोएं। विभिन्न क्षेत्रों के लिए

संस्तुत प्रजातियों को ही बोना चाहिए। विशेष प्रजातियाँ उस क्षेत्र के प्रमुख रोगों के लिए सहनशील होती हैं। बीज की सिफारिश से ज्यादा मात्रा का प्रयोग न करें व कतार से कतार की व पौधे से पौधे की उचित दूरी बनाये रखें। रोग की प्रारंभिक अवस्था में रोगी पौधों को उखाड़ देना चाहिए। फसल की आवश्यकता अनुसार 2–3 सिंचाई करें। काले धब्बों का रोग (अल्टरनेरिया अंगमारी) के लक्षण दिखाई दे तो ताजा बनाये हुए लहसुन सत् का 2 प्रतिशत की दर से छिड़काव करें। सफेद रतुआ के ज्यादा प्रकोप पर मैटलैक्सिल 4 प्रतिशत व मैन्कोजेब 68 प्रतिशत कवकनाशी का 2.5 ग्राम/ली. की दर से पानी में घोल बना कर छिड़काव करें। चूर्णिल आसिता रोग की रोकथाम के लिए फसल में रोग के लक्षण नजर आते ही तुरन्त कवकनाशी कैराथेन 0.1 प्रतिशत की दर से 10 दिन के अन्तर में तीन छिडकाव करें। स्क्लेरोटीनिया गलन की रोकथाम के लिए फसल पर कार्बेन्डाजिम कवकनाशी का 2 ग्राम प्रति ली. पानी की दर से फूल आने के समय छिड़काव करें। स्कलरोटीनिया गलन रोग ग्रसित पौधे, जो सामान्य पौधों से पहले पक जाते हैं, को पिंड बनने से पूर्व ही जड़ से उखाड़ कर बाहर निकाल दें एवं बाद में रोग ग्रसित अवशेषों को जला दें।